10

कृषक समाज
[PEASANT SOCIETY]

रॉबर्ट रेडफील्ड (Robert Redfield) ने कृषक समाज (Peasant Society) की अवधारणा दी। इसके माध्यम से वे ग्रामीण समाज की आन्तरिक एवं बाह्य संरचना को समझाने का प्रयत्न करते हैं। इस शताब्दी के मध्य में विश्व के विभिन्न भागों में कृषक समुदायों का अध्ययन किया गया। इन समुदायों की खोज से समाजशास्त्र और सामाजिक मानवशास्त्र के लिए अध्ययन का नवीन क्षेत्र खुल गया जो काफी व्यापक था। इन सामाजिक विज्ञानों से सम्बन्धित विद्वान यह महसूस कर रहे थे कि वे एक नवीन प्रकार के समाज का पता लगाने में सफल हुए हैं। उनकी यह मान्यता थी कि विश्व के विभिन्न क्षेत्रों में प्रमुखतः कृषक समाज पाये जाते हैं। भारत, ईथोपिया, ब्राजील तथा यूगोस्लाविया जैसे देशों को 'कृषक समाज' नामक अवधारणा के अन्तर्गत सम्मिलित किया गया।

यहां इस बात को स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि यह स्वीकार किया जा सकता है कि भारत या चीन में कृषक समुदाय पाये जाते हैं। लेकिन भारतीय या चीनी समाज समग्र रूप में कृषक समाज है, ऐसा नहीं माना जा सकता। जिन समाजों को कृषक समाज के रूप में माना गया है, उनमें कई बार काफी जटिलता और स्तरीकरण देखने को मिलता है। ऐसे समाज काफी मात्रा में स्तरीकृत प्रकार के हैं। इनमें कई प्रकार के समूह, वर्ग एवं श्रेणियां सम्मिलित हैं जिनसे सम्बन्धित लोगों को किसी भी स्वीकृत अर्थ में कृषक नहीं कहा जा सकता। जिन समाजों में संख्या की दृष्टि से कृषकों की अधिकता पायी जाती है, वहां भी ऐसे अकृषक लोग पाये जाते हैं जो सम्पूर्ण समाज की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण या निर्णायक भूमिका निभाते हैं। विभिन्न समाजों में इन अकृषक स्तर के लोगों की प्रकृति और भूमिका में अन्तर दिखलायी पड़ता है।

भारत जैसे विशाल देश के सभी ग्रामीण समुदाय कृषकों के समुदाय नहीं माने जा सकते। संरचनात्मक दृष्टि से भारतीय ग्रामों में काफी भिन्नता देखने को मिलती है। सभी ग्रामों के लिए कृषक समुदाय संज्ञा का प्रयोग करने से हम ग्रामीण भारत की कृषि सम्बन्धी संरचना के विभिन्न प्रकारों के बीच पाये जाने वाले महत्वपूर्ण अन्तरों को नहीं समझ पायेंगे। भारत में कार्य कर रहे अनेक समाजशास्त्री और सामाजिक मानवशास्त्री इस मान्यता को लेकर

आगे बढ़े हैं कि ग्रामीण भारत कृषक समाज का भौतिक स्थान (Physical locus) है। भारत और विदेशों में कार्यरत रॉबर्ट रेडफील्ड के अनुयायियों की रचनाओं से भी यही बात प्रकट होती है। स्वयं **आन्द्रे बिताई** ने लिखा है कि यद्यपि कुछ समाजों को कृषक समाजों के रूप में चित्रित करना लाभदायक हो सकता है, परन्तु यह सन्देहजनक है कि कोई परम्परागत भारत के लिए इस बात को माने जहां एक ओर वृहद जातीय-संस्तरण की प्रणाली पायी जाती है तो दूसरी ओर जटिल कृषि सम्बन्धी स्तरीकरण।[1] **स्पष्ट है कि भारतीय समाज को 'कृषक समाज'** (Peasant Society) **नहीं माना जा सकता।**

आन्द्रेबिताई का मत है कि भारतीय समाज को अक्सर नगरीय समाज, कृषक समाज और जनजातीय समाज के रूप में वर्गीकृत किया जाता है। इसे हम आरेख द्वारा इस प्रकार दर्शा सकते हैं :

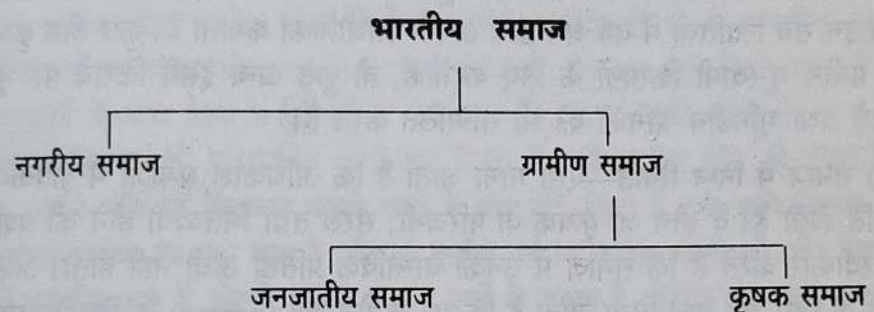

सर्वप्रथम, भारतीय समाज को नगरीय और ग्रामीण खण्डों में बांटा जाता है। तत्पश्चात् ग्रामीण खण्ड को जनजातीय और अजनजातीय खण्डों में। अजनजातीय गांवों से मिलकर भारतीय समाज का कृषक खण्ड निर्मित होता है। अनेक विश्वविद्यालयों तक के सामाजिक मानवशास्त्र के अध्यापन में विद्यार्थियों को नगरीय भारत तथा जनजातीय भारत के सम्बन्ध में बतलाया जाता है और शेष भारत के लिए यह मान लिया जाता है कि वह कृषकों का समाज है। ऐसा करने से परम्परागत भारत के कृषि सम्बन्धी संस्तरण से जो आज भी देश के अनेक भागों में पाया जाता है, लोग परिचित नहीं हो पाते। इसके अतिरिक्त भारत में किये गये कुछ ग्राम-अध्ययन (Village Studies) वास्तव में कृषकों के अध्ययन नहीं होकर विजातीय समुदायों के अध्ययन हैं। ये अध्ययन कृषक समाज को सही अर्थों में चित्रित नहीं कर पाते हैं। यहां हम सर्वप्रथम कृषक समाज की अवधारणा को समझने का प्रयत्न करेंगे, तत्पश्चात् यह देखेंगे कि यह अवधारणा भारतीय सन्दर्भ में कहां तक उपयुक्त है।

कृषक समाज की अवधारणा
(CONCEPT OF PEASANT SOCIETY)

कृषक समाज की अवधारणा को समझने के लिए '**कृषक**' किसे कहा गया है। यह जानना आवश्यक है क्योंकि कृषकों से ही कृषक समाज का निर्माण होता है। कृषक समाज की अवधारणा को स्पष्ट करने के लिए हम यहां आन्द्रे बिताई, रॉबर्ट रेडफील्ड तथा थियोडोर शनीन के विचारों का उल्लेख करेंगे।

चैम्बर्स ट्वनटियथ सैन्चुरी डिक्शनरी (Chambers Twentieth Century Dictionary) के अनुसार एक कृषक वह है जो, 'एक ग्रामीण है, एक देहाती है, जिसका व्यवसाय ग्रामीण

1 Andre Beteille, *Six Essays in Comparative Sociology*, p. 41.

काम है, और कृषक वर्ग वह है जिसमें कृषक या भूमि को जोतने वाले देहाती श्रमिक आते हैं। अंग्रेजी भाषा में ग्रामीण जीवन और श्रम के जीवन के मध्य एक सम्बन्ध पाया जाता है। यह बात पूर्ण औद्योगिक यूरोपीय समाज के लिए अवश्य सही है, परन्तु इसे प्रत्येक समाज और संस्कृति के लिए ठीक नहीं माना जा सकता। **एक कृषक का अर्थ निम्न आय समूह में आने वाले अशिक्षित असभ्य व्यक्ति से लिया गया है।**

आन्द्रे बिताई[1] के विचार (Views of Andre Beteille)—साधारण बोलचाल की शब्दावली में कृषक के कई अर्थ लिये गये हैं, जिनमें तीन पर आन्द्रे बिताई ने प्रकाश डाला है।

(1) **कृषक भूमि से जुड़ा होता है**—कृषक भूमि से जुड़ा होता है। वह न केवल भूमि पर रहता है बल्कि उसे अपने श्रम से लाभदायक बनाता है। कानूनी दृष्टि से वह भूमि का स्वामी, उसे किराये पर जोतने वाला या बिना भू-स्वामी अधिकार के एक श्रमिक हो सकता है। लेकिन इन सब स्थितियों में वह श्रम द्वारा अपनी आजीविका कमाता है। कुछ लोग कृषक शब्द का प्रयोग भू-स्वामी किसानों के लिए करते हैं, तो कुछ अन्य इसमें किराये पर भूमि जोतने वाले तथा भूमिहीन श्रमिकों को भी सम्मिलित करते हैं।[2]

(2) **समाज में निम्न स्थिति**—ऐसा माना जाता है कि अधिकांश समाजों में कृषक की निम्न स्थिति होती है। वे लोग जो कृषक के परिश्रमी, सरल तथा मितव्ययी होने की प्रशंसा करते हैं, स्वीकार करते हैं कि समाज में उनकी वास्तविक प्रतिष्ठा ऊंची नहीं होती। अक्सर कृषक वर्ग के लिए यह मान लिया जाता है कि यह कुलीन वर्ग (gentry) के विपरीत प्रकार की विशेषताएं लिये हुए है। यहां कुलीन वर्ग का प्रयोग ऐसे समूह के लिए किया गया है जो भूमि से अपनी आजीविका कमाता है, लेकिन स्वयं को श्रम-सम्बन्धी कार्यों में लगाये बिना। स्तरीकरण के क्रम में कृषक-वर्ग की स्थिति पर न केवल आर्थिक दृष्टि से बल्कि सांस्कृतिक दृष्टि से भी विचार किया जाता है। यदि इस वर्ग के लोग उस भूमि के स्वामी भी होते हैं, जिसको वे जोतते हैं तो भी उसका आकार काफी छोटा होता है और आय इतनी कम होती है कि परिवार कठिनता से ही अपना भरण-पोषण कर पाता है। कृषकों को अपरिष्कृत, असभ्य या अशिक्षित भी माना जाता है। उनके लिए यह समझा जाता है कि सभ्य जीवन के तौर-तरीकों से ये अपरिचित हैं।

(3) **मजदूरों का पूरक**—कृषकों को मजदूरों का प्रतिपक्ष या पूरक माना जाता है। कहने का तात्पर्य है कि 'कृषकों तथा श्रमिकों' के लिए यह समझा जाता है कि ये एक ही श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं। ऐसा मानने से यह स्पष्ट होता है कि कृषकों का विभिन्न वर्गों के द्वारा शोषण होता है। एक ओर शोषित कृषक-वर्ग आता है तो दूसरी ओर उनके शोषणकर्ता।

'कृषक' शब्द के उपरोक्त तीन अर्थों को ध्यान में रखने पर स्पष्ट हो जाता है कि सम्पूर्ण भारतीय सभ्यता के लिए 'कृषक समाज' शब्दावली का प्रयोग अनुपयुक्त है। **आन्द्रे बिताई की मान्यता है कि भारतीय समाज के ग्रामीण खण्ड के लिए इस शब्दावली (कृषक समाज) का प्रयोग उचित नहीं है।** यद्यपि अन्य समाजों में ग्रामीण खण्ड इस शब्दावली के अन्तर्गत आ सकते हैं।[3]

1 Andre Beteille, *Ibid*, pp. 40-44.
2 Daniel Thorner, '*Peasantry* in David L. Sils (ed.), *International Encyclopaedia of the Social Sciences*, Vol. II, pp. 505-11.
3 Andre Beteille, *op. cit.*, p. 45.

रॉबर्ट रेडफील्ड के विचार (Views of Robert Redfield)—रॉबर्ट रेडफील्ड ने, जिन्होंने सर्वप्रथम कृषक अध्ययनों के क्षेत्र में कार्य किया, परिभाषाओं के प्रतिपादन में सावधानी बरतने पर जोर दिया है। आपका मत है कि सामाजिक मानवशास्त्री कभी-कभी कृषक समाज को एक अवशिष्ट श्रेणी (Residual Category) के रूप में दर्शाते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि कृषक समाज के अन्तर्गत उन सभी समाजों को सम्मिलित किया जा सकता है जो स्पष्ट रूप से न तो औद्योगिक समाज है और न ही जनजातीय समाज। वे कहते हैं कृषक समाज के बारे में ये विचार त्रुटिपूर्ण हैं क्योंकि संसार के विभिन्न भागों में कृषक समाज की भिन्न-भिन्न विशेषताएं पायी जाती हैं।

यूरोपीय अनुभव पर आधारित कृषकों की परिभाषा यूरोपीय वास्तविकता का चित्रण करती है। अतः भारतीय समाज के अध्ययन में इस परिभाषा का प्रयोग सावधानीपूर्वक किया जाना चाहिए। ऐसा प्रतीत होता है कि भारतीय मानवशास्त्रियों ने भारतीय कृषकों की विशेषताओं पर गहराई के साथ विचार नहीं किया है और यह मान लिया जाता है कि यहां के कृषकों में अन्य देशों के कृषकों के समान ही विशेषताएं पायी जाती हैं। स्वयं रेडफील्ड ने कृषक समाज को परिभाषित करते हुए लिखा है, "**वे ग्रामीण लोग जो जीवन-निर्वाह के लिए अपनी भूमि पर नियन्त्रण बनाये रखते हैं और उसे जोतते हैं तथा कृषि जिनके जीवन के परम्परागत तरीके का एक भाग है और जो कुलीन वर्ग या नगरीय लोगों की ओर देखते हैं और उनसे प्रभावित होते हैं, जिनके जीवन का ढंग उन्हीं के समान है, लेकिन कुछ अधिक सभ्य प्रकार का।**"[1] रेडफील्ड ने **वोल्फ** (Wolf) द्वारा प्रतिपादित अवधारणा '**कृषक वर्ग**' (Peasantry) और **सेजोबर्ग** (Sajoberg) द्वारा विकसित अवधारणा '**अभिजात-वर्ग**' (Elite) की ओर ध्यान दिया तथा दोहरे समाज के दोनों आधे-आधे भागों तक पहुंचने के लिए दोनों को सम्मिलित कर दिया और 'कृषक समाज' तक पहुंचे गये।[2]

इसे चित्र द्वारा इस प्रकार प्रकट कर सकते हैं :

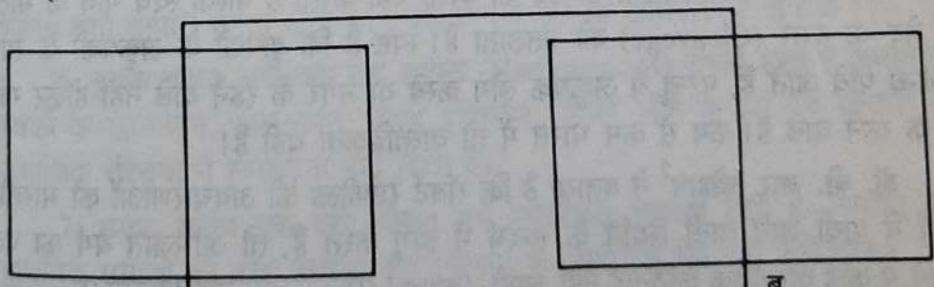

('अ' तथा 'ब' का मिश्रित रूप)

1 "Those rural people who control and cultivate their land for subsistence and as a part of a traditional way of life and who look to, and are influenced by, gentry of towns people whose way of life is like theirs but in a more civilized form."
—Robert Redfield, *Peasant Society and Culture*, p. 29.

2 "Redfield took note of the peasantry, a concept developed by Wolf, and an elite, a concept advanced by Sajoberg and combined the two to arrive at the two halves of the double society, namely the peasant society."
—Dr. B. R. Chauhan, *'An Indian Village : Some Questions'*, *Man in India*, Vol. 490. No. 2, April-June 1960, p. 122.

भूमिहीन श्रमिकों के बीच पाये जाने वाले भेद ऐसे तथ्य हैं जिनका ग्रामीण पर्यावरण में सामना करना होता है।

रॉबर्ट रेडफील्ड ने एक समाज की जिन विशेषताओं का उल्लेख किया है उन्हें संक्षेप में हम यहां दर्शाएंगे :

1. **कृषि जीवन जीने का तरीका**—कृषक वह है जो कृषि को जीवन जीने के तरीके (way of life) के रूप में अपनाता है। पीढ़ियों से उसके परिवार में कृषि से ही जीवन निर्वाह होता रहा है। वह इसमें लाभ हानि नहीं देखता। यदि कोई व्यक्ति कृषि में लगे श्रम, खाद बीज और उससे होने वाली फसल को आर्थिक लाभ-हानि के रूप में देखता है तो उसे हम किसान (Farmer) कहते हैं, कृषक नहीं।

2. **कृषक भूमि से जुड़ा होता है**—कृषक न केवल कृषि भूमि पर रहता है, वरन् उसे अपने परिश्रम से लाभदायक भी बनाता है। कानूनी दृष्टि से भूमि का स्वामी होता है किराए पर कृषि करने वाला कृषि श्रमिक कहलाता है, कृषक नहीं। कृषक मानसिक रूप से अपनी भूमि से जुड़ा होता है। कृषि भूमि की मात्रा गांव में उसके पद और प्रतिष्ठा का निर्धारण करती है। यदि कृषक की भूमि बिकती है तो वह ऐसा समझता है मानो उसके जीवन और परिवार का कुछ खो गया है।

3. कृषक अपनी कृषि भूमि का स्वयं नियन्त्रणकर्ता होता है उसका उस पर अधिकार होता है और वही उस भूमि का भू-स्वामी होता है।

4. **कृषक स्वयं के लिए उत्पादन करता है**—वह अपनी फसल को बाजार में बेचने के लिए पैदा नहीं करता।

5. **कुलीन वर्ग** के लोग कृषक के मार्ग दर्शक होते हैं। कृषक को जब भी कोई परेशानी होती है तो मार्ग दर्शन के लिए वह कुलीन वर्ग की ओर निहारता है। क्योंकि कुलीन वर्ग शिक्षित तथा सम्पत्ति सम्पन्न होता है। उसके सम्बन्ध विभिन्न अधिकारियों से होते हैं।

6. **कृषक समाज अपेक्षतया एक समरूप** (Hamogenous) **समाज होता है** अर्थात् सभी कृषकों के खान-पान, रहन-सहन, विश्व दृष्टिकोण, जीवन जीने के ढंग एवं विचारों तथा सामाजिक संरचना में समरूपता पाई जाती है।

7. **कृषक समाज एक अविभेदीकृत एवं अस्तरीकृत समुदाय होता है**—अर्थात् उसमें आधुनिक समाजों की तरह उच्चता और निम्नता के अत्यधिक भेद नहीं पाये जाते।

8. कृषक समाज नगरों या कस्बों के कुलीन वर्ग से भिन्न है यद्यपि यह उनसे अनेक क्षेत्रों में प्रभावित होता है।

9. आर्थिक आधार पर कृषक समाज अन्य समाजों से भिन्नता लिए हुए होता है।

नार्बेक के विचार (Views of Norback)—नार्बेक ने कृषक समाज की अवधारणा को अर्थिक आधार पर दर्शाया है। वे लिखते हैं, "कृषक समाज एक बहुत बड़े स्तरीकृत समाज का वह उप-समाज है जो या तो पूर्व-औद्योगिक अथवा अंशतः औद्योगिक है।" इस प्रकार से नार्बेक के अनुसार (1) कृषक समुदाय लघु उत्पादकों का वह समुदाय है जो केवल अपने उपभोग के लिए ही उत्पादन करता है। (2) कृषक वर्ग में व्यावसायिक विशेषीकरण का स्तर बहुत अग्र होता है।

कृषक समाज की नार्बिक द्वारा दी गयी परिभाषा में आर्थिक आधार को ही सर्वोपरि माना गया है अतः यह परिभाषा भी अन्य पक्षों को स्पष्ट न करने के कारण उचित प्रतीत नहीं होती है।

थियोडोर शनीन के विचार (Views of Theodor Shanin)—थियोडोर शनीन ने 'कृषक समाज' का अर्थ स्पष्ट करने की दृष्टि से इसके चार मौलिक पक्षों पर ध्यान दिया है जो निम्नलिखित हैं :

(1) कृषक परिवार का खेत बहु-आयामीय सामाजिक संगठन की मौलिक इकाई के रूप में (The peasant family farm as the basic unit of multidimensional social organisation)।

(2) भूमि कृषि-कर्म जीवन-निर्वाह के प्रमुख साधन के रूप में जिससे उपभोक्ता आवश्यकताओं के प्रमुख भाग की पूर्ति (Land husbandry as the main means of livelihood directly providing the major part of Consumption needs)।

(3) लघु समुदायों के जीवन के ढंग से सम्बन्धित विशिष्ट परम्परागत संस्कृति (Specific traditional culture related to the way of life of small communities)

(4) **निम्न आर्थिक स्थिति**—कृषक वर्ग पर बाह्य व्यक्तियों का प्रभुत्व (The underdog position, the domination of peasantry by outsiders)।[1]

'कृषक समाज' के प्रथम पक्ष के सम्बन्ध में अधिकांश लोगों की यही मान्यता है कि कृषक परिवार उपभोग एवं उत्पादन की इकाई के रूप में कार्य करता है। कृषक के कार्य और अवकाश का केन्द्र परिवार ही होता है और यही विशेषता कृषक जीवन के ढंग को औद्योगिक जीवन के तरीके से भिन्नता प्रदान करती है। लेकिन कृषक को परिभाषित करते समय इस बात को अवश्य ध्यान में रखा जाना चाहिए कि कृषक परिवार के द्वारा खेत पर कार्य किये जाते हैं। यहां आवश्यकता कार्य के वास्तविक संगठन की सावधानीपूर्वक जांच की है। **शनीन** द्वारा वर्णित कृषक समाज का **दूसरा पक्ष** स्पष्ट है जिसके अन्तर्गत बतलाया गया है कि कृषि के माध्यम से लोग अपनी आजीविका चलाते हैं और अपनी अधिकांश उपभोक्ता आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। कृषक समाज से सम्बन्धित **तीसरा पक्ष** यह है कि इन समाजों की अपनी विशिष्ट परम्परागत संस्कृति होती है। यह संस्कृति लघु समुदायों के जीवन के तरीके (Way of life) से विशेषतः सम्बन्धित होती है। शनीन द्वारा वर्णित कृषक समाज का **चौथा पक्ष** रेडफील्ड के दृष्टिकोण से भिन्न प्रकार के दृष्टिकोण को व्यक्त करता है। इस दृष्टिकोण का आधार मार्क्सवादी या अधिक सही रूप में समाजशास्त्र में लेनिनवादी परम्परा है। कृषकों पर रेडफील्ड और लेनिन के दृष्टिकोणों में अन्तर पाया जाता है। रेडफील्ड ने कृषक वर्ग, कुलीन वर्ग तथा अन्य सामाजिक स्तरों के बीच सावयवी बन्धनों (Organic Bonds) पर जोर दिया है, जबकि लेनिनवादी दृष्टिकोण में कृषकों के शोषित वर्ग और शोषणकर्ताओं के बीच पाये जाने वाले भेद या दरार पर।

कृषकों एवं अ-कृषकों के आपसी सम्बन्धों के बारे में रेडफील्ड और शनीन के विचारों में असमानता पायी जाती है। दोनों ही मानते हैं कि कृषकों और अकृषकों के बीच वही सम्बन्ध है जो आन्तरिक और बाह्य व्यक्तियों के मध्य होता है। रेडफील्ड यह मानते हैं कि

1 Theodor Shanin (ed.), *Peasants and Peasant Societies* Introduction

कृषकों के विपरीत प्रकार के लोग अर्थात् अकृषक या कुलीन वर्ग के लोग कस्बे या नगर में पाये जाते हैं। शनीन की मान्यता है कि कृषकों की स्थिति अकृषकों की तुलना में नीची होती है और इन पर बाहरी व्यक्तियों का प्रभुत्व होता है। ये दोनों ही विद्वान गांव को कृषकों का सापेक्ष रूप से एक समरूप समुदाय (Homogeneous Community) मानते हैं। यूरोपीय विद्वानों ने गांव और कृषक समुदाय को एक ही माना है। गांव उसे माना गया जहां कृषक रहते हैं और जो लोग गांव में रहते हैं उन्हें कृषक कहा गया है। कहने का तात्पर्य यह है कि ग्रामीण अध्ययन से सम्बन्धित अधिकांश अवलोकनकर्ताओं ने यह बतलाया है कि गांव कृषकों का एक समुदाय है। परन्तु भारतीय सन्दर्भ में इस बात को इस रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता। वास्तविकता यह है कि जो चीज आन्तरिक रूप से काफी भिन्नता लिये हुए होती है, वह दूर से अक्सर समरूपता लिये हुए दिखाई पड़ती है। गांवों को कृषकों के समरूप समुदाय मानने वाले यूरोप के नगरीय क्षेत्रों के बुद्धिजीवी लोग हैं। वास्तविकता को चित्रित करने की दृष्टि से इनके अध्ययनों में कुछ अस्पष्टता पायी जाती है।

चाहे यूरोपीय गांव की वास्तविक प्रकृति और बनावट कैसी भी क्यों न हो, रेडफील्ड और शनीन दोनों ने ही कृषक समाज की लाभदायक परिभाषाएं प्रस्तुत की हैं जिनमें ऐसे समाज की सरल और अविभेदीकृत प्रकृति पर जोर दिया गया है।[1] इन विद्वानों के द्वारा दी गई परिभाषाएं कृषक समाज के सामान्य अर्थों के अधिक निकट हैं। लेकिन ये परिभाषाएं भारतीय ग्रामीण वास्तविकता का सही चित्रण नहीं कर पातीं। इसका कारण यह है कि ग्रामीण भारत में या भारतीय गांव में ऐसे लोगों के महत्वपूर्ण खण्ड या वर्ग (Sections) पाये जाते हैं जो किसी भी दृष्टि से कृषक वर्ग या कृषक समाज की इस अवधारणा के अन्तर्गत नहीं आते।

क्रोबर के विचार (Views of Kroeber)—**क्रोबर** ने कृषक समाजों के सम्बन्ध में लिखा है कि वे अंश समाजों या खण्ड समाजों (Part Societies) को खण्ड संस्कृतियों (Part Cultures) सहित निर्मित करते हैं। इसे चित्र द्वारा हम इस प्रकार प्रकट कर सकते हैं :

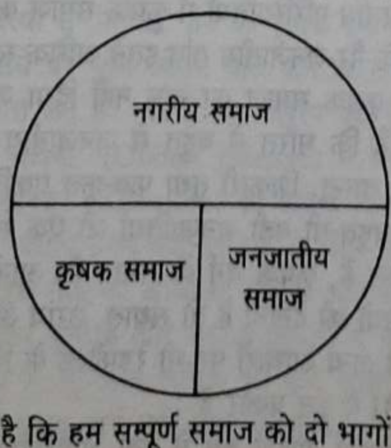

उपर्युक्त चित्र से स्पष्ट है कि हम सम्पूर्ण समाज को दो भागों में बांट सकते हैं—नगरीय एवं ग्रामीण समाज। ग्रामीण समाज स्वयं भी कृषक समाज और जनजातीय समाज दो भागों में विभक्त है। इस प्रकार से कृषक समाज एक खण्ड या अंश समाज (Part society) है।

1 Andre Beteille, *op. cit.*, p. 49.

चूंकि प्रत्येक समाज की अपनी-अपनी संस्कृति है अतः कृषक समाज की भी अपनी संस्कृति है जो खण्ड या अंश संस्कृति कही जा सकती है। इस प्रकार से क्रोबर के अनुसार कृषक समाज खण्ड समाज है जिसकी अपनी खण्ड संस्कृति (Part Culture) है।

क्रोबर ने अन्यत्र लिखा है, "कृषक समाज मध्यवर्ती स्थिति में है इसके एक ओर जनजातीय समाज है तो दूसरी ओर नगरीय समाज।"[1] क्रोबर के विचार रेडफील्ड के विचारों से बहुत साम्यता रखते हैं।

इसे हम चित्र द्वारा इस प्रकार कर सकते हैं :

नगरीय समाज (उच्च स्थिति)
कृषक समाज (मध्यवर्ती स्थिति)
जनजातीय समाज (निम्न स्थिति)

भारत में कृषक समाज की अवधारणा की उपयुक्तता
(RELEVANCE OF THE CONCEPT OF PEASANT SOCIETY IN INDIA)

कृषक समाज के बारे में विभिन्न विद्वानों के विचारों को जान लेने के पश्चात् हम यहां यह देखने का प्रयत्न करेंगे कि वह अवधारणा भारतीय सन्दर्भ में कहां तक उपयुक्त है। रेडफील्ड के अनुसार यदि हम सम्पूर्ण भारतीय समाज को नगरीय, कृषक तथा जनजातीय खण्डों में विभक्त करते हैं तो यह योजना भारतीय समाज पर सन्तोषजनक रूप से लागू नहीं होती। इस सन्दर्भ में **आन्द्रे बिताई** ने रेडफील्ड के विचारों के प्रति दो आपत्तियां उठायी हैं—**प्रथम**, रेडफ़ील्ड ने 'कृषक समाज' को एक 'अवशिष्ट श्रेणी' (Residual Category) माना है अर्थात् ग्रामीण भारत, से जनजातीय भारत को अलग करने पर जो कुछ शेष बचता है, उसे ही रेडफील्ड कृषक समाज कहते हैं। इससे कृषक समाज के वास्तविक लक्षणों पर प्रकाश नहीं पड़ता तथा भारतीय परिस्थितियों में कृषक समाज को अवशिष्ट श्रेणी नहीं माना जा सकता। **द्वितीय**, भारत के गैर-जनजातीय गांव इतने अधिक स्तरीकृत हैं कि उन्हें रेडफील्ड के विचारों के आधार पर कृषक समाज का नाम नहीं दिया जा सकता। इसके अतिरिक्त आन्द्रे बिताई की मान्यता है कि भारत में बहुत से जनजातीय गांव वास्तव में कृषकों के समुदाय हैं। यदि हम छोटी घुमन्तु, शिकारी तथा फल-फूल एकत्रित करने वाली जनजातियों को छोड़ दें तो पायेंगे कि बहुत-सी बड़ी जनजातियां जो एक स्थान पर रहकर खेती करती हैं तथा समुदायों में सगठित हैं, कृषक वर्ग के समान हैं। आन्द्रे बिताई का तो मत है कि यदि भारत में कृषक समुदायों को देखना है तो संथाल, उरांव और मुण्डा जनजातियां इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है।[2] कुछ अन्य आधारों पर भी रेडफील्ड के विचारों को भारतीय सन्दर्भ में उपयुक्त नहीं माना गया है। वे इस प्रकार हैं :

(1) एक कृषक समुदाय आदर्श रूप में एक अविभेदीकृत और अस्तरीकृत समुदाय माना गया है। लेकिन जब हम विभिन्न **भारतीय ग्राम अध्ययनों पर दृष्टि** डालते हैं तो पाते हैं कि भारतीय ग्राम काफी विभेदीकृत और स्तरीकृत रूप में पाये जाते हैं, लेकिन इसका तात्पर्य

1 A. L. Kroeber, *The Eastern Anthropologist*, Vol. 31. No. 3, July-Sept. 1978, p. 229.
2 Andre Beteille, *op. cit.*, p. 42.

सकता है, मिल जायेंगी, परन्तु ग्रामीण सामाजिक संरचना के सही अध्ययन की दृष्टि से यह आवश्यक है कि प्रत्येक जाति में पाये जाने वाले आन्तरिक विभेदीकरण तथा स्तरीकरण को ध्यान में रखा जाय। अतः आवश्यकता इस बात की है कि ग्रामीण अध्ययनों में विश्लेषण की इकाई के रूप में जाति के स्थान पर परिवार को लिया जाय। ऐसा करने पर ही हमें पता चल पायेगा कि किसी कृषक समझी जाने वाले जाति में सही अर्थों में कितने परिवार कृषक हैं, कितने अ-कृषक और कितने उत्पादन में वास्तविक भूमिका की दृष्टि से सीमान्त स्थिति में हैं।

(3) गांव में यह भी पाया गया है कि बहुत से परिवार प्रस्थिति तथा पारिवारिक सम्मान सम्बन्धी सामाजिक दृष्टि से परिभाषित अवधारणाओं के कारण स्वयं खेत पर काम नहीं करना चाहते। वे या तो बटाईदारी में खेती करवाते हैं या किराये पर भूमि जोतने को दे देते हैं। वे कई बार भूमिहीन श्रमिकों द्वारा अपने खेतों में कार्य कराते हैं और स्वयं निरीक्षणकर्ता के रूप में भूमिका निभाते हैं। जब कोई परिवार दो या तीन पीढ़ियों से खेत पर स्वयं काम करना बन्द कर देता है तो ऐसी स्थिति में वह कृषक कहलाने का अधिकारी नहीं रह जाता है।

(4) सही अर्थों में उसी परिवार को कृषक परिवार कहा जा सकता है जिसके सभी सक्रिय सदस्य पुरुष और स्त्रियां दोनों खेत पर काम करते हैं।[1] यहां स्वाभाविक रूप से यह प्रश्न उठता है कि ऐसे परिवारों को कृषक परिवार माना जाय या नहीं जिसमें पुरुष खेतों पर काम करते हैं, लेकिन प्रथा के अनुसार स्त्रियों को ऐसा करने से रोक दिया जाता है। ग्रामीण भारत में समाज के विभिन्न स्तर की स्त्रियों के द्वारा घर के बाहर किये जाने वाले कार्यों के सम्बन्ध में निश्चित सूचना के अभाव में कार्य के संगठन के बारे में निश्चित रूप से कुछ कहना कठिन है। ग्रामीण भारत में परिवार की स्थिति के निर्धारण में इस बात का विशेष महत्व है कि परिवार विशेष की स्त्रियों को घर के बाहर स्वयं खेत पर अथवा अन्य कहीं कार्य करने की आज्ञा है अथवा नहीं। यदि स्वयं खेत नहीं जोतने वाले भू-स्वामी परिवार के पुरुष खेत पर काम करना आरम्भ कर देते हैं तो सामाजिक दृष्टि से परिवार की स्थिति एकदम नीची हो जाती है। यह बात न केवल हिन्दुओं के लिए बल्कि मुसलमानों के लिए भी सही है। इस देश में सापेक्ष रूप से समृद्धशाली परिवारों की स्त्रियों के द्वारा स्वयं के खेतों पर या मजदूरी के लिए दूसरों के खेतों पर काम करने का प्रश्न नहीं उठता। भारत में सम्पत्ति अधिकारों की संरचना, प्रस्थिति, सम्मान तथा शुद्धता की धारणाएं कृषि कार्य में स्त्री की भूमिका और कृषक परिवार में कार्य के विभाजन का निर्धारण करती हैं। ये धारणाएं सांस्कृतिक रूप से विशिष्टता लिये हुए होती हैं और यह समाज और दूसरे समाज में, यहां तक कि एक ही समाज के विभिन्न स्तर के लोगों में भिन्न-भिन्न होती हैं। आन्द्रे बिताई[2] का कहना है कि यदि हमें कृषक परिवारों या समुदायों का अधिक अर्थपूर्ण ढंग से अध्ययन करना है तो इन विश्वासों, मूल्यों तथा मनोभावों पर विशेष ध्यान देना होगा। ऐसा करने पर ही हम वास्तविकता को समझ सकेंगे।

उपर्युक्त सम्पूर्ण विवरण से स्पष्ट है कि गांवों में रहने वाले सभी लोगों को कृषक नहीं माना जा सकता। भारतीय ग्राम की जनसंख्या काफी स्तरीकृत है और यहां कई ऐसे स्तरों के लोग पाये जाते हैं जिन्हें किसी भी दृष्टि से कृषक नहीं कहा जा सकता। ग्रामों की सामाजिक

1 Andre Beteille, *op. cit.* p. 53.
2 *Ibid.*, p. 55.

संरचना और कृषक कार्यों के संगठन को ठीक प्रकार से समझने के लिए यह आवश्यक है कि परिवार को अध्ययन की इकाई के रूप में चुना जाय और इस बात का पता लगाया जाय की घर के भीतर और बाहर स्त्री और पुरुषों का विभाजन कैसे हुआ है?

(5) भारत में विभिन्न प्रकार के ग्राम पाये जाते हैं। कुछ ग्राम स्पष्टतः कृषक ग्राम हैं, तो कुछ ऐसे ग्राम हैं जहां कृषकों के साथ-साथ अकृषक लोग भी पाये जाते हैं जिनका आर्थिक, सामाजिक तथा राजनैतिक दृष्टि से विशेष प्रभुत्व है। देश के विभिन्न भागों में भिन्न- भिन्न प्रकार के गांवों की प्रधानता पायी जाती है। ऐसी स्थिति में यह कहना वैज्ञानिक दृष्टि से तर्कसंगत नहीं है कि जनजातीय भारत को छोड़कर शेष ग्रामीण भारत कृषक समाज के अन्तर्गत आता है। सारांश के रूप में आन्द्रे बिताई ने बताया है कि कृषक-वर्ग (Peasantry) और कुलीन वर्ग (Gentry) का सह-अस्तित्व बहुत से भारतीय ग्रामों का एक सामान्य लक्षण है और कुछ ग्रामों का तो विशिष्ट लक्षण। यह ग्राम की यूरोपीय अवधारणा तथा शायद यूरोपीय वास्तविकता से भिन्न प्रकार की विशेषता है। लेकिन आत्म-विश्वास के साथ इस सम्बन्ध में कुछ कहने योग्य होने के लिए हमें तथ्यों की अधिक गहराई के साथ छान-बीन करनी होगी।

(6) रेडफील्ड कृषक समाज को एक समरूप समुदाय (Homogeneous Community) मानते हैं। किन्तु भारत के सन्दर्भ में यह बात सही नहीं है क्योंकि भारत के एक ही गांव में विभिन्न जाति, वर्ग, धर्म, प्रजाति एवं संस्कृति से सम्बन्धित लोग निवास करते हैं। ऐसी स्थिति में भारतीय गांवों को समरूप समुदाय की संज्ञा देना उपयुक्त नहीं है।

डॉ. बी. आर. चौहान[1] ने राजस्थान के एक गांव 'राणावतों की सादड़ी' के अपने अध्ययन के आधार पर कृषक समाज की अवधारणा से सम्बन्धित कुछ महत्वपूर्ण बिन्दुओं को स्पष्ट किया है। **प्रथम**, यदि आर्थिक कारणों से गांवों के सभी कृषक तम्बाकू, कपास, तिल या मूंगफली की फसल उगाने लगें जिससे नकद दाम प्राप्त करने में सहायता मिले तो ऐसी दशा में कृषक (Peasant) और किसान (Farmer) का अन्तर समाप्त हो जाता है। **द्वितीय,** रेडफील्ड ने कृषक समाज को दो भागों में विभाजित किया है—कृषक तथा अभिजात वर्ग। परन्तु गांव में निवास करने वाले कई लोगों जैसे मिट्टी के बर्तन बनाने वाले तथा विभिन्न किस्म के अन्य निर्माताओं के सम्बन्ध में इस अवधारणा में विचार नहीं किया गया है। ये लोग न तो कृषक वर्ग में आते हैं और न ही अभिजात वर्ग में। **तृतीय,** कृषक समाज की अवधारणा में आर्थिक विभाजन तो स्पष्ट है, लेकिन इसमें सामाजिक, धार्मिक एवं प्रशासनिक संरचना को महत्व नहीं दिया गया है। इस संरचना को समझे बिना ग्रामीण समाज को ठीक से समझना कठिन है। आन्द्रे बिताई का विश्वास है कि अस्पष्ट और अनिश्चित अवधारणा जिसका समाजशास्त्रियों एवं सामाजिक मानवशास्त्रियों में काफी चलन हो चुका है, इस प्रकार के अन्वेषण में बाधक के रूप में है।[2] अतः उपर्युक्त तथ्यों को ध्यान रखते हुए कहा जा सकता है कि **रॉबर्ट रेडफील्ड द्वारा प्रतिपादित कृषक समाज की अवधारणा भारतीय ग्रामीण समुदायों पर पूरी तरह लागू नहीं होती। यह अवधारणा यूरोपीय वास्तविकता का चित्रण तो अवश्य करती है, परन्तु ग्रामीण भारत की वास्तविकताओं का नहीं।**

1 B. R. Chauhan, *A Rajasthan Village*, p. 287.

2 "It is my belief that the vague and imprecise concept of 'Peasant Society' which has gained currency among sociologists and social anthropologists stands as an obstacle in the way of this kind of investigation."—Andre Beteille, *op. cit.*, p. 57.

कृषक समाज तथा लघु समुदाय में अन्तर
(DISTINCTION BETWEEN PEASANT SOCIETY AND LITTLE COMMUNITY)

हमने लघु समुदाय और कृषक समाज की अवधारणाओं का उल्लेख किया। इससे इन दोनों के मध्य पाये जाने वाले भेद को निम्नांकित आधारों पर स्पष्ट किया जा सकता है :

(1) लघु समुदाय का आकार छोटा होता है, इसमें प्राथमिक सम्बन्धों की विशेषताएं, घनिष्ठता एवं सामुदायिक भावना पायी जाती है। कृषक समाज अपेक्षतया बड़े आकार का होता है तथा इसमें सदैव ही सामुदायिक भावना का होना आवश्यक नहीं है।

(2) लघु समुदाय में विशिष्टता पायी जाती है जबकि कृषक समाज में सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक भिन्नताएं देखने को मिलती हैं।

(3) लघु समुदाय एक समरूप समुदाय है। यद्यपि रेफील्ड ने कृषक समाज को समरूप समुदाय कहा है, किन्तु आन्द्रे बिताई ने इसे समरूप समुदाय नहीं माना है।

(4) लघु समुदाय आत्मनिर्भर होता है। जीवन से लेकर मृत्यु तक सभी आवश्यकताओं की पूर्ति लघु समुदाय में हो जाती है, किन्तु कृषक समाज आत्मनिर्भर भी हो सकता है तथा अन्य समुदयों पर निर्भर भी।

(5) लघु समुदाय कृषक समुदाय की तुलना में अधिक प्राचीन हैं।

(6) लघु समुदाय परम्परावादी एवं सामान्यतः परिवर्तन से दूर होते हैं जबकि कृषि के यन्त्रों, तरीकों, आदि में नवीन अविष्कार होने पर कृषक समाजों में परिवर्तन आते रहते हैं।

(7) लघु समुदाय की अवधारणा सार्वभौमिक है, जबकि कृषक समाज की अवधारणा विभिन्न देशों में भिन्न-भिन्न है।

प्रश्न

1. कृषक समाज की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए।
2. भारतीय सन्दर्भ में कृषक समाज की अवधारणा की उपयुक्तता स्पष्ट कीजिए।
3. कृषक समाज की विशेषताएं बताइए तथा लघु समुदाय से इसका अन्तर स्पष्ट कीजिए।
4. रेडफील्ड द्वारा प्रतिपादित कृषक समाज की अवधारणा का आलोचनात्मक विवेचन कीजिए तथा कृषक समाज की आधारभूत विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
5. भारत में कृषक समाज की अवधारणा की क्या प्रासंगिकता है? उदाहरण सहित समीक्षा कीजिए।